स्वाधीनता के अज्ञात वीर

प्रज्ञा शाकल्य

शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

हमारे देश को आजाद हुए 76 साल हो चुके हैं लेकिन यह यक्ष प्रश्न हमेशा हमारे सामने आ खड़ा होता है कि हमारी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष और प्राणोत्सर्ग करने वाले अपने पुरखों के बारे में हम कितना जानते है? साथ ही साथ यह सवाल भी है कि हम उनमें से कितनों को जानते हैं? स्वाधीनता सेनानियों का जिक्र आते ही अनायास ही हमें महात्मा गाँधी, चंद्रशेखर आज़ाद, सुभाष चन्द्र बोस, बाल गंगाधर तिलक का स्मरण हो आता है। हम चाचा नेहरु को जानते हैं, मौलाना आज़ाद को जानते हैं, मंगल पाण्डेय को जानते हैं, रानी लक्ष्मीबाई को जानते हैं... क्या हम 'बूढ़ी गाँधी' मातंगिनी को जानते हैं? मंगल पाण्डेय से भी पहले आजादी की लौ सुलगाने वाले फतेहबहादुर को कितना जानते हैं हम। इतिहासकारों की दृष्टि उन चर्चित नामों तक ही सीमित रह जाती है परन्तु उन अज्ञात, अख्यात वीरों का नाम इतिहास के पन्नों से विलुप्त है, उन सन्दर्भों या प्रसंगों की कहीं चर्चा नहीं मिलती। उन प्रसंगों का जिक्र अगर मिल भी जाये पर वीरों के नाम नहीं मिलते। असल में इस सम्बन्ध में हमारी जानकारी गहरे समन्दर में तैरते उस आइसबर्ग जैसी है जिसका 90% हिस्सा हम देख ही नहीं पाते। दरअसल ऐसे लाखों-करोड़ों अनाम वीर-वीरांगनाएं स्वतंत्रता की पुण्य वेदी पर अपने भाल अर्पित कर हमेशा के लिए हमारे इतिहास से रुखसत हो गये। इतिहास ने तो उन्हें भुला दिया लेकिन लोक ने उन्हें आज भी सहेज कर रखा है। लोक गीतों में, अम्मा की लोरियों में और चौपाल पर देर शाम हो रहे आल्हे में वे आज भी उसी ऊर्जा के साथ ज़िंदा हैं।

भारतीय स्वाधीनता संघर्ष महज़ राजनीतिक सत्ता के स्थानांतरण के लिए लड़ा जाने वाला संग्राम मात्र न था, वरन उसके वृहत्तर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सरोकार भी थे। यह संघर्ष किसी एक जाति, धर्म या समुदाय विशेष तक सीमित न था अपितु देश के विभिन्न राज्यों, जिलों यहाँ तक कि गाँवों में भी अपने-अपने स्तर पर भिन्न-भिन्न रूपों में जारी था। असंख्य छोटे-छोटे विद्रोह हुए, हजारों अनाम शहीदों ने अपना बलिदान दिया। वृहद् स्तर पर 1857 में प्रथम स्वाधीनता संग्राम का होना,

इन्हीं छुटपुट किन्तु आवश्यक विद्रोहों का नतीजा था, गौर से देखा जाए तो पाएंगे कि पहले स्वाधीनता संग्राम की नींव इन्हीं शहीदों ने तैयार की थी फिर भी ये वक्त की कलम और इतिहास के पन्नों में कभी दर्ज न हो सके। हमारा शोध पत्र इन्हीं अज्ञात वीरों को समाज की मुख्य धारा से अवगत कराने का सुगम प्रयास है। 'स्वाधीनता के अज्ञात वीर' यह एक ऐसा विषय है जिस पर शोध-पत्र ही नहीं बल्कि पूरा शोध प्रबंध लिखा जा सकता है। इस शोध प्रबंध में उन स्वातंत्र्य-वीरों की चर्चा करुँगी जो इतिहास में प्रायः भुला दिए गये किन्तु उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। शोध-पत्र की अपनी सीमा है, स्वाधीनता के आरंभिक संघर्षों से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक के एक सदी से ज्यादा के समय को समेट पाना इस पत्र में संभव नहीं तथापि मेरा मंतव्य यही रहा है कि मैं विषय के साथ समुचित न्याय कर सकूँ।

मुग़ल शासकों की अत्याचारी नीतियों, देश की विभिन्न रियासतों और स्थानीय शासकों के बीच परस्पर एकता और राष्ट्रीय भावना का अभाव, केन्द्रीय सत्ता का लोप आदि ऐसे प्रमुख कारण रहे हैं जिन्होंने ब्रितानी हुकूमत को देश की सत्ता सौप दी। महत्वाकांक्षी ब्रितानी सत्ता अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए अपने शासन को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करने लगी। दमन और शोषण की प्रक्रिया से 1600 ई. में व्यापारी बनकर आए अंग्रेजों ने 1857 तक भारत की सत्ता पर सीधा नियंत्रण स्थापित कर लिया था। अनियंत्रित लगान और बेरहम शोषण, असंतोष और रंगभेद ने भारतीय किसानों, मजदूरों और आदिवासियों के अन्दर विद्रोह की आग को भड़का दिया। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रान्तों में अंग्रेजों के विरूद्ध दर्जनों महत्वपूर्ण विद्रोह आरम्भ हो गये थे।

1857 की घटना को स्वतंत्रता के लिए किया गया प्रथम संग्राम या संघर्ष कहा जाता है, जबकि लगभग एक दशक पूर्व स्वतंत्रता-संघर्ष का आगाज़ हो चुका था। अयोध्या सिंह लिखते हैं - "इन संघर्षों को अंग्रेजों ने शासक की दृष्टि से विद्रोह कहा परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी कोई न्याय एवं तर्कसंगत अध्ययन नहीं हुआ।" इन संघर्षों में लाखों परिवारों ने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। उनका लक्ष्य देश की स्वाधीनता थी न कि इतिहास में अपना नाम दर्ज कराना। आजादी के इन्हीं कुछ अज्ञात वीरों का परिचय हम आगे देने का प्रयास कर रहे हैं।

महाराजा फ़तेह बहादुर शाही

फतेह बहादुर शाही ने 1750 में अपनी रियासत हुस्सेपुर की गद्दी को संभाला। हुस्सेपुर वही जो पहले बिहार के सारण जिले में था और वर्तमान में गोपालगंज जिले के अंतर्गत आता है। बिहार के 1857 के विद्रोह में सक्रिय महाराज वीर कुंवर सिंह को सभी जानते हैं परंतु फतेह बहादुर शाही को कम ही लोग जानते होंगे। यद्यपि इनको इतिहास के पन्नों में जगह नहीं दी गई परंतु इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। सन् सत्तावन में जो संग्राम रूपी वृक्ष लक्षित हुआ उसके बीज फतेहबहादुर शाही जैसे वीरों के पास ही मिलते है। सुप्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय भी अपने एक लेख 'भोजपुरी समाज और साहित्य' में इसी धारणा का उल्लेख करते हैं। श्री पांडेय के ही शब्दों में - "अंग्रेजी राज के विरुद्ध विद्रोह की जो आग फतेह बहादुर शाही ने सुलगाई थी उस का दूसरा विस्फोट सन 1857 ई. में हुआ था। 1857 के विद्रोह की लपट को अंग्रेजी राज कभी नहीं भुला पाया"।

ब्रिटिश सरकार ने जैसे ही अपनी हुकूमत जमाई शाही ने विद्रोह का बिगुल फूंक दिया। सिराजुद्दौला को हराकर 1757 में ब्रिटिश सरकार ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। बक्सर के युद्ध के पश्चात बंगाल और बिहार का भी राजस्व अधिकार सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। हुस्सेपुर के राजस्व पर ब्रिटिश सरकार का अधिकार करना, फतेह बहादुर शाही को असह्य था। उन्होंने अंग्रेजों को मालगुजारी देने से इनकार कर दिया और यहीं से अर्थात 1765 ई. से ही स्वतंत्रता संघर्ष की एक लंबी लड़ाई की शुरुआत हुई। स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी फ़तेह बहादुर को अंग्रेजों की गुलामी बर्दाश्त नहीं थी। इन्होंने स्वाधीनता के लिए अपने भाई बसंत शाही की हत्या कर दी जो ईस्ट इंडिया कंपनी का मुखबिर बनकर उनकी जानकारियां उपलब्ध कराता था एवं कंपनी की तरफ से हुस्सेपुर में कर उगाही करता था। अंग्रेज अधिकारियों में फतेहबहादुर शाही का डर कितना ज्यादा था यह 'इसाक' और 'साइमन रोज़' द्वारा 17 जून 1775 ई. में 'वारेन हेन्स्टिंग' को भेजे इस पत्र में साफ़ दिखता है। हिंदी में अनूदित पत्र के कुछ अंश उल्लेखनीय हैं – "इस पत्र से आपको ज्ञात होगा कि फतेह बहादुर शाही ने आक्रमण करके बसंत शाही तथा अमीर जमाल की, जिनके जिम्में करवसूली का भार दिया गया था, हत्या कर दी। वहां के कर्मचारियों को लिखे हुए पत्र से ज्ञात होता है कि इस घटना के बाद वहां कर वसूली का काम बंद हो गया है। वहां की जनता का जीवन संकट में हो गया है। हम लोग आपको सूचित

कर देना चाहते हैं कि फतेह बहादुर शाही हुस्सेपुर राज्य के ताल्लुकेदार हैं। वे सन् 1768 ईस्वी में कंपनी सरकार से विद्रोह कर बैठे और 'कर' देने से स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। जो सेना उनके विद्रोह को दबाने के लिए भेजी गई थी, उससे डटकर मुकाबला किया। अंत में हम लोग बड़ी कठिनाई से उनको बिहार प्रांत से बकजोगिनी के जंगल में खदेड़ने में सफल हुए हैं। हम लोग आपसे तथा आपके सभासदों से अनुरोध करते हैं कि आप लोगों को फतेह बहादुर शाही को पकड़ने के लिए जो भी व्यवस्था उचित जान पड़े उससे हम लोगों को अवगत कराने का कष्ट करें।"

यह संघर्ष इतना बढ़ चुका था कि तत्कालीन बंगाल के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग को फतेह बहादुर शाही को मारने के लिए अतिरिक्त सेना बुलानी पड़ी थी लेकिन वे इस विद्रोह को कुचलने या फतेह बहादुर शाही को पकड़ने में पूर्ण रूप से असफल रहे। फतेह बहादुर शाही का आतंक इतना था कि वारेन भागकर चुनार चला गया। उस समय हेस्टिंग्स के भाग जाने की यह घटना लोकगीतों के रूप में बिहार के बच्चे-बच्चे की जुबान पर थी। पश्चिमी इतिहासकार 'मिन्डेन विल्सन' अपनी किताब 'History of Behar Indigo Factories' में इस बात की पुष्टि करते हैं। विल्सन एक छोटी बच्ची के गीत के भाव अपने शब्दों में लिखते हैं - "*Put on elephants Saddle and Howdash on horses and let us skidaddle along with our forces cries Warren Hastings* " गीत के बोल इस प्रकार प्राप्त होते हैं –

घोड़े पे हौदा, हाथी पे जीन

भागे चुनार को वारेन हेस्टींग

सनद रहे कि अंग्रेजों और किसी अकेले भारतीय राजा के बीच चलने वाली यह पहली और आख़िरी ऐसी लड़ाई है जो लगातार 23 वर्षों तक चली। फतेहबहादुर शाही कभी अंग्रेजों से सीधे मुकाबला करते तो कभी गुरिल्ला तकनीकी से युद्ध जारी रखते। फतेहबहादुर का साथ उनकी पड़ोसी रियासतों ने नहीं दिया किन्तु उनकी प्रजा शाही के कुशल नेतृत्व में कंधे से कंधा मिलाकर लड़ती रही। यह फतेहबहादुर शाही का खौफ़ ही था कि अपार शक्ति की स्वामी ब्रितानी हुकूमत उनसे भयभीत होकर हुस्सेपुर से मालगुजारी वसूलना बंद कर चुकी थी। सीमित संसाधनों के कारण अक्सर वे पीछे हटकर बांकजोगिनी के जंगल से अपना संघर्ष जारी रखते थे। एक बार इनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए अंग्रेज सरकार ने हुस्सेपुर के किले को ध्वस्त कर

दिया, तब फ़तेहबहादुर शाही ने तमकुही राज नामक नगर की स्थापना की। 1800 ई. तक उन्होंने तमकुही राज से ही अपनी सत्ता का सञ्चालन किया और उसके बाद अचानक फतेहबहादुर कहीं गायब हो गए। उनकी गुरिल्ला युद्ध तकनीकि से भयभीत अंग्रेज उनके जाने के कई वर्षों बाद तक उनसे आतंकित रहे। ऐसे वीर योद्धा का नाम इतिहास में दर्ज न होना अपने आप में एक बड़ा सवाल है।

ऊदा देवी

स्वतंत्रता के इस संघर्ष में न केवल पुरुषों ने बल्कि महिलाओं ने भी उतनी ही वीरतापूर्वक अंग्रेजों के विरूद्ध अपनी भूमिका निभाई है। कुछ महिला सेनानियों जैसे लक्ष्मीबाई, झलकारीबाई आदि के नामों से हम परिचित हैं लेकिन अनेक महिला वीरांगनाओं से हम अभी भी अपरिचित ही हैं। ऊदा देवी उन वीरांगनाओं में से हैं जिनके बहादुरी के किस्से स्थानीय लोगों में प्रचलित थे, परन्तु इतिहास में दर्ज न होने के कारण लोक की स्मृति से धुंधले पड़ते जा रहे हैं। आत्मविश्वास से लबरेज इस वीरांगना का जन्म लखनऊ के उजरियांव में हुआ था। दलित समुदाय से सम्बन्ध रखने वाली ऊदा देवी को 'बेगम हज़रत महल' की सुरक्षा के लिए बहाल किया गया था। यद्यपि बेग़म हज़रत महल को सभी जानते हैं किन्तु ऊदा देवी जैसी साहसी वीरांगना अख्यात ही रहीं।

1857 के स्वाधीनता संग्राम के दौरान लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को अंग्रेजों ने कलकत्ता भेज दिया। उनकी अनुपस्थिति में बेग़म हज़रतमहल ने विद्रोह का झंडा उठाया। स्वतंत्रता के इस संघर्ष में ऊदा देवी के पति मक्का पासी मारे गए। इससे आहत ऊदा देवी के विचार और अधिक स्पष्ट हो गये और उन्हें एक दिशा प्राप्त हुई। इस संदर्भ में दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय का कहना है कि- "इस लड़ाई में बहुत लोग मारे गए जिसमें उनके पति की भी मृत्यु हो गई और वहीं से उन्होंने सोचना प्रारंभ किया कि कुछ करना चाहिए। पति की मौत का सदमा ऊदा देवी के लिए प्रेरणा बन गया और वहीं से उनकी सोच और विचार में बदलाव हुआ"। ऊदा देवी ने दलित महिलाओं की एक सेना तैयार की जो अंग्रेजों से बिना डरे उन पर टूट पड़ती थी। इनकी इस महिला सेना पर लिखी एक कविता निम्नांकित है –

"कोई उनको हब्सी कहता, कोई कहता नीच अछूत,

अबला कोई उन्हें बतलाए, कोई कहे उन्हें मजबूत।"

ऊदा देवी के अन्दर अंग्रेजो के प्रति इतना आक्रोश व्याप्त था कि उन्होंने अकेले ही छत्तीस अंग्रेजों को मार गिराया। जब ब्रिटिश सेना ने सिकंदरबाग़ में भारतीय सैनिकों पर हमला किया। तब ऊदा देवी पुरुष वेश धारण कर बन्दूक और बारूद लेकर पीपल के पेड़ पर चढ़ गईं और अंग्रेजों को सिकंदर बाग़ में घुसने नहीं दिया। अंग्रेज सैनिकों को यह पता ही नही लग पा रहा था कि हमला कहां से हो रहा है, बाद में एक सैनिक की नज़र उन पर पड़ी और ऊदा देवी जमीन पर गिर पड़ीं। उनकी जैकेट हटा कर दुश्मनों ने देखा कि मृत पुरुषवेश में एक स्त्री है। ऐसी वीरता की मिसाल कायम करने वाली ऊदा देवी किसी पुरुष क्रांतिकारी से कम नहीं थी। छत्तीस अंग्रेजों को अकेले ही मार गिराना बड़े साहस का काम था फिर भी इतिहासकारों की दृष्टि इन पर नहीं पड़ी।

मतांगिनी हजरा

वीरांगनाओं के इस क्रम में मतांगिनी हजरा का भी एक नाम है जिनका अपूर्व योगदान अतुलनीय है किन्तु उन्हें भी प्रायः अदृष्ट और अचर्चित ही छोड़ दिया गया। मतांगिनी हजरा को तत्कालीन सहयोगी उनके वास्तविक नाम से नहीं बल्कि 'बूढ़ी गाँधी' नाम से जानते थे। मतांगिनी हजरा गाँधी जी के साथ 1920 के असहयोग से लेकर 1942 के भारत छोड़ो जैसे महत्वपूर्ण आंदोलनों तक में समान ऊर्जा और उत्साह के साथ सत्ता से टकराती रहीं। हजरा की चर्चा इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि जिस उम्र में लोगों को सहारे की जरुरत होती है उस उम्र में वे हाथ में तिरंगा थामे भीड़ में आगे-आगे चलती थीं। देशभक्ति का जज्बा और आज़ादी का जुनून 72 साल की मतांगिनी में अठारह साल की क्रांतिकारी युवती-सी ऊर्जा भर देता था।

मतांगिनी का जन्म बंगाल के एक छोटे से गाँव में 18 अक्टूबर1870 को हुआ था। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के चलते अधिक उम्र के व्यक्ति से इनका विवाह कर दिया गया। अठारह वर्ष की उम्र में ही मतांगिनी विधवा हो गईं। विधवा मतांगिनी ने स्वयं को देश और समाज के लिए अर्पित कर दिया।

1905 ई. में लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया। इससे क्रुद्ध राष्ट्रवादियों ने उसके विरूद्ध विद्रोह कर दिया। इस घटना ने मतांगिनी के अन्दर देशप्रेम के बीज अंकुरित करने में महती भूमिका निभाई। गाँधी जी के नेतृत्व में जब देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ हुआ, मतांगिनी नें उन आंदोलनों में भाग लेना आरम्भ

कर दिया। प्रतिदिन 'वंदेमातरम्' के उद्घोष के साथ जुलूस निकाले जाते थे। "तामलुक' में हुई एक सभा में मतांगिनी ने स्वतंत्रता संघर्ष में पूर्ण रूप से भाग लेने की शपथ ली। बूढ़ी गाँधी ने 1930 ई. में नमक सत्याग्रह के दौरान नमक बनाकर नमक कानून का उल्लंघन किया। 1933 ई. में चल रहे 'करबंदी आन्दोलन' को दबाने के लिए तत्कालीन गवर्नर 'एंडरसन' को भेजा गया, जहां उनके विरोध में मतांगिनी काला झंडा लिए सबसे आगे खड़ी थीं। पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। इसी प्रकार 29 सितम्बर 1942 ई. को मतांगिनी हजरा लगभग 5000 लोगों का नेतृत्व कर रही थीं, जिसमें अधिकतर महिलायें शामिल थीं। इस सेना का उद्देश्य ब्रितानी सरकार के कार्यालय और थाने पर नियंत्रण करना था। जब यह जुलूस शहर के करीब पहुंचा तो ब्रिटिश सैनिकों ने इन्हें रोकने की पुरजोर कोशिश की परन्तु वे जुलूस को रोक नहीं पाए। मतांगिनी हजरा 'वंदेमातरम्' का उद्घोष करते हुए आगे बढती रहीं। 73 साल की उम्र में वे अंग्रेजों का डटकर मुकाबला करती रहीं। उनकी वीरता से अंग्रेजी हुकूमत इतना डर गई कि उन्हें गोलियों से छलनी कर दिया गया। बेजान होकर धरती पर गिरने से पहले मतांगिनी हजरा के हाथों में तिरंगा था और जुबान पर वंदेमातरम्...

फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव और उनकी पत्नी ताराrानी श्रीवास्तव

फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव और उनकी पत्नी ताराrानी श्रीवास्तव की नसों में देशप्रेम लहू बनकर बहता था। फुलेना प्रसाद का मूल नाम रमाकांत श्रीवास्तव था, इनका जन्म 1914 ई० में सारण जिले के पचरुखी नामक गाँव में हुआ था। महज 28 साल की उम्र में इन्होंने स्वंत्रता एवं स्वाधीनता के लिए अपनी जान कुर्बान कर दी, कई अज्ञात वीरों की भांति इन्हें भी वह सम्मान नहीं मिला जिसके ये हकदार थे। इतिहास के पन्नों से अदृष्ट फुलेना स्थानीय लोगों के हृदय में बसते हैं।

फुलेना प्रसाद महात्मा गाँधी से बहुत प्रभावित थे। वैसे तो बचपन से ही इनमें त्याग और समर्पण के गुण परिलक्षित होते थे किन्तु राजनीति में वे 1930 के नमक सत्याग्रह से पूर्ण रूपेण सक्रिय हुए। 1932 में उनका विवाह महाराजगंज की तारादेवी से हुआ। विवाहोपरांत वे अपनी धर्मपत्नी के साथ महात्मा गाँधी से मिलने सेवाग्राम आश्रम गये और वहीं बापू के समक्ष ही देशसेवा की शपथ ली। राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी और अंग्रेजों के विरुद्ध जागरूकता फैलाने के कारण उन्हें जेल भेज दिया गया।

16 अगस्त 1942 को ब्रिटिश फ़ौज ने महाराजगंज थाना को अधिगृहीत करने का प्रयास किया। फुलेना प्रसाद को जैसे ही इसकी सूचना प्राप्त हुई वे थाने की तरफ दौड़ पड़े। ब्रिटिश शासन के विरूद्ध एक बड़ा जुलूस निकला। महाराजगंज के कार्यकर्ताओं में विद्रोह की भावना भभक उठी और वे तोड़-फोड़ मचाते हुए थाने पर तिरंगा फहरा कर उसे अपने अधिकार में लेना चाहते थे। फुलेना प्रसाद हाथो में तिरंगा लिए हुए थाने की ओर दौड़े, उनके साथ-साथ उनका परिवार भी इस जुलूस में शामिल हुआ। प्रभु नारायण विद्यार्थी अपनी पुस्तक में इस दृश्य को बड़े मार्मिक ढंग से लिखते हैं- "फुलेना बाबू मंच पर चढ़कर तिरंगा फहराना ही चाहते थे कि आवाज़ आई- 'रुको'। लेकिन पाँव बढ़ते ही रहे। लाठियां और भाले लिए सिपाही रास्ता रोकने के लिए खड़े हो गये। फिर भी निर्भीकता से सिर ताने, सीना अड़ाए, शांत मुद्रा में प्रसन्नचित्त तिरंगा लिए आगे बढ़ते ही रहे और गाते रहे –

"इसकी शान न जाने पाए

चाहे जान भले ही जाए"

ब्रिटिश सैनिक उन पर लाठियों की बौछार करते रहें। आठ गोलियां उन्हें लग चुकी थी फिर भी वे विचलित नहीं हुए। 9वीं सीधे माथे पर लगी और छेदती हुई आर-पार हो गई। इस बलिदानी वीर को विस्मृत कर देना स्वातंत्र्यदेवी के अनन्य उपासकों के साथ अन्याय होगा।

फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव की पत्नी तारारानी भी क्रांतिकारी थीं। इन्होंने अपने पति के अधूरे कामों को पूरा किया। आज़ादी की लड़ाई में इन्होंने अपने पति फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव के कंधे से कंधा मिलाकर देश के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वहन किया। तारारानी को बचपन से ही देशभक्ति का पाठ पढ़ाया गया था। इनके दादा और पिता दोनों देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी थे। भारत छोड़ो आन्दोलन में तारारानी सक्रिय रहीं जिसके कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। तारा ने अपने पति के बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने दिया, जैसे ही 9वीं गोली उनके पति के सिर के आरपार हुई और वे धराशायी हुए, तारारानी ने अपनी साड़ी का किनारा फाड़कर उनके सिर पर बांधा और सिंहनी की भांति दहाड़ती हुई थाने पर तिरंगा लहरा दिया।

तारारानी लिखती हैं- "मैंने अपने पति को मृत नहीं माना, उनकी निरंतर उपस्थिति अनुभव करती रही और उनकी याद लिए सेवा व्रत निभाती रही। दूसरी

बार जेल में एक वर्ष तक मुझे एकांत कोठरी में रखकर तनहाई की यातना दी गई; पति की याद व प्रेरणा के सहारे ही सब झेल गई"। ताराराानी ने स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया। उन्हें अपनी स्मृति में रखने के बजाए लोगों ने उन्हें विस्मृत कर दिया।

ताराराानी, ऊदा देवी, मतांगिनी हजरा, महाराजा फ़तेह बहादुर शाही, फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव के अलावा सेनापति बापट, पोटी श्रीरामुलू, पीर अली खान, मुशर्रफ़ खां, पुलकित कामत, हरिकांत झा, कालेश्वर मंडल, मेवालाल पासवान, सीताराम भगत, विद्याभूषण शुक्ल, लहटन चौधरी, बैकुंठ शुक्ल, आशादेवी, अवंतिबाई लोधी, सहेजा बाल्मीकि आदि लाखों-हजारों स्वतंत्रता सेनानी इसी श्रेणी में आते हैं। ऐसे और भी कई नाम हैं जो स्थानीय लोगों में तो प्रचलित हैं परन्तु इतिहास में स्थान न पा सकें किन्तु उनके लहू से सिंचित यह स्वाधीन धरा अनंत काल तक उन अनाम वीरों की ऋणी रहेगी।

आज़ादी के इतने बरस बाद भी आज जब उनके असीम शौर्य और निःस्वार्थ बलिदान को इतिहास में उपेक्षित पाती हूँ तो मुझे राष्ट्रकवि दिनकर की 'शहीद-स्तवन' कविता याद आती है-

"अंधा चकाचौंध का मारा

क्या जाने इतिहास बेचारा,

साखी हैं उनकी महिमा के

सूर्य चन्द्र भूगोल खगोल

कलम, आज उनकी जय बोल"।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

I. अक्षयवर दीक्षित, सं. 2007. *भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का प्रथम वीर नायक.* दिल्ली: अभिधा प्रकाशन.

II. अयोध्या सिंह. 1977. *भारत का मुक्ति संग्राम.* नई दिल्ली.

III. अरुण सिंहा. 2020. *भारतीय नारी योद्धायें.* छत्तीसगढ़: संकल्प प्रकाशन.

IV. अशोक गांगुली. 2022. *भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास.* दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.

V. आशारानी वोहरा. 2017. *क्रांतिकारी किशोर .* दिल्ली : प्रभात प्रकाशन .

VI. डॉ श्वेता. दि.न. *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं महिलायें (1920-1950).* दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

VII. प्रभु नारायण विद्यार्थी. 2003. *स्वाधीनता आन्दोलन की बिखरी कड़ियाँ.* दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

VIII. भोलानाथ सिंह. 2007. “सारण्य जनपद का उत्तरांचल : ऐतिहासिक विवेचन (महाराज फतेहबहादुर शाही से सम्बंधित अंश).”

IX. महेश कुमार जैन, और कन्हैया लाल चंद्रिक . 2009. *सन 1857 की महान राज्यक्रांति और वीरांगना रानी झलकारी बाई.* वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

X. मैनेजर पाण्डेय. दि.न. “भोजपुरी समाज और साहित्य.”

XI. रामधारी सिंह दिनकर. 2009. *हुंकार.* दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

XII. लाजवंती झा. 2022. *विस्मृत चेहरे .* दिल्ली : प्रभात प्रकाशन .

XIII. सैयद नजमुल रजा रिज़वी. दि.न. *1857 का विद्रोही जगत पूरबी उत्तर प्रदेश.* ओरियेंट ब्लेक स्वान.